संकट का नया कारोबार

दुनिया के दूसरे मुल्कों की तरह परागणकर्ताओं का स्पष्ट और गहरा संकट भारत में भी दिखाई देना लगा है। कई राज्यों में अच्छी फसल के लिए न सिर्फ परागणकर्ताओं को किराए पर लेने की मजबूरी खड़ी हो रही है बल्कि कई जगह कृत्रिम परागण के बिना काम ही नहीं चल रहा। हाथों से परागण के लिए मानव परागक तैयार किए जा रहे हैं। प्रकृति की जगह यह इंसानी कृत्रिम भरपाई एक नए संकट को जन्म दे रही है। हिमाचल प्रदेश से **राजू सजवान,** कर्नाटक से **एम रघुराम,** केरल से **केए शाजी,** नई दिल्ली से **हिमांशु नितनवरे** और **विवेक मिश्रा** की रिपोर्ट

सभी फोटो: विकास चौधरी / सीएसई

मार्च के महीने में समुद्र तल से करीब साढे छह हजार फीट की ऊंचाई पर जंजहैली बाजार में कड़कड़ाती हुई ठंड है। यहां सुबह-सुबह कुछ बक्से उतारे जा रहे हैं। इन बक्सों में लाखों की तादाद में मधुमक्खियां हलचल कर रही हैं। हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में स्थित इस ऊंचाई पर मौजूद बाजार में करीब 300 किलोमीटर दूर ऊना से यह मधुमक्खियां पहुंचाई गई हैं। इन मधुक्खियों के बक्सों को 68 साल के गोपाल सिंह कायदे से जांचकर अपनी गाड़ी में लदवा रहे हैं। लेकिन सवाल है क्यों?

सिंह का जवाब आता है, "चार साल हो गए हमारे यहां सेब के बागानों में देसी मधुक्खियां और तितलियां नहीं आतीं, इनकी काफी कमी हो गई है। अगर हम मधुमक्खी के इन बक्सों को बाहर से किराए पर न मंगवाएं तो हमारे पेड़ों पर फूल तो आ जाएंगे लेकन फल कभी नहीं होगा।" परागण संकट से जूझने वाले वह अकेले किसान नहीं हैं। हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी सेब किसान किराए पर मधुमक्खियां लेकर परागण की प्रक्रिया पूरी कर रहे हैं।

सेब के बागानों और मधुमक्खियों का रिश्ता बेहद गहरा है। कोई 110 बरस पहले 1907 में न्यूयॉर्क राज्य के कृषि विभाग की ओर से जारी "रिपोर्ट ऑफ डायरेक्टर ऑफ फार्मर्स इंस्टीट्यूट्स एंड नॉर्मल इंस्टीट्यूट्स : फॉर द ईयर 1906" से इसका पता चलता है। इस रिपोर्ट में ऐसे प्रयोगों का जिक्र किया गया, जिनसे यह संकेत मिला कि कई फसलें उपजाऊ परागण के लिए मधुमक्खियों पर निर्भर हैं। इन फसलों में सेब, चेरी, नाशपाती, स्ट्रॉबेरी, रास्पबेरी, रेड क्लोवर, व्हाइट क्लोवर, तरबूज, स्क्वैश, कद्दू और खीरा शामिल हैं।

इस रिपोर्ट के मुताबिक, एक सामान्य प्रयोग में शोधकर्ताओं ने सेब के पेड़ की कुछ शाखाओं के चारों ओर जाली लगा दी, ताकि मधुमक्खियां वहां न जा सकें। इसके बाद उन्होंने देखा कि उन शाखाओं पर फूलों की संख्या में नाटकीय रूप से कमी आ गई। यह प्रयोग इस बात का प्रमाण था कि मधुमक्खियां फलों और फसलों की उपज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

न्यूयॉर्क के कृषि विभाग की इस रिपोर्ट में मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा) और उसके कृषि के बीच संबंध को लेकर बताया गया "यह अनुमान है कि यदि मधुमक्खियां पौधों पर नहीं जा सकें तो एक लाख से अधिक पौधों की प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी।" इनके अलावा ऐसे पौधे भी हैं जो पूरी तरह से कीटों पर निर्भर नहीं होते, लेकिन जिनकी उत्पादकता मधुमक्खियों और अन्य कीटों के आने से बढ़ जाती है।

यूनाइटेड किंगडम स्थित वैज्ञानिकों और एक्सपर्ट्स का ग्लोबल नेटवर्क *सेंटर फॉर एग्रीकल्चर एंड बॉयोसाइंसेज इंटरनेशनल* (सीएबीआई) रिव्यू में प्रकाशित शोधपत्र "व्हाट आर द मेन रीजन फॉर द वर्ल्डवाइड डिक्लाइन इन पॉलिनेटर पॉपुलेशन्स" के मुताबिक परागण करने वाले जीवों में सबसे ज्यादा संख्या कीटों की होती है। इनमें मधुमक्खियां, तितलियां, पतंगे (जैसे हॉक्समॉथ), मक्खियां, भौंरे और ततैया शामिल हैं। कीटों के बाद पक्षी और फिर चमगादड़ परागण में अहम भूमिका निभाते हैं। कुछ छोटे जानवर, जैसे चूहे और छिपकलियां भी कभी-कभी फूलों का परागण कर देते हैं।

यह ध्यान देने लायक है कि इन सबमें सबसे जरूरी परागक मधुमक्खियां हैं क्योंकि वे फूलों पर पराग इकट्ठा करने के लिए ही जाती हैं। वह अपने एक दौरे में पराग या मधुरस (नेक्टर) या दोनों ही जमा कर सकती हैं। जबकि बाकी परागक सिर्फ मधुरस के लिए फूलों पर आते हैं। मधुमक्खियों के शरीर में पराग जमा करने के लिए खास संरचनाएं होती हैं। अकेली रहने वाली मधुमक्खियों के शरीर पर शाखायुक्त बाल (स्कोपी) होते हैं, जबकि झुंड यानी सामाजिक सरंचना में रहने वाली और ऑर्किड मधुमक्खियों के पैरों पर पराग टोकरी (कॉर्बिकुला) होती है। मधुरस से मधुमक्खियों को कार्बोहाइड्रेट और पानी मिलता है, जबकि पराग उन्हें प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज और कुछ सूक्ष्मजीव भी देता है।

परागण एक जरूरी प्रकृतिक प्रक्रिया है जो पौधों के बीज बनने खेती के उत्पादन और धरती पर जैव विविधता बनाए रखने के लिए बहुत जरूरी है। *रिसर्च गेट* पर प्रकाशित शोध "पॉलिनेटर डिक्लाइन-एन इकोलॉजिकल क्लैमिटी इन द मेकिंग?" के शोधार्थी क्रिस्टोफर जे. रोड्स के मुताबिक, "दुनिया की लगभग 87.5 प्रतिशत (लगभग 3 लाख 8 हजार प्रजातियां) फूलदार पौध कीटों और अन्य जानवरों द्वारा परागित होती हैं और वैश्विक स्तर पर प्रमुख खाद्य फसलों की तीन-चौथाई से अधिक प्रजातियां किसी न किसी रूप में जानवरों द्वारा किए गए परागण से लाभ उठाती हैं *(देखें : फसल उत्पादन में परागण पर निर्भरता, पृष्ठ 25)*।" हालांकि, इस अहम परागण प्रक्रिया के लिए देसी मधुमक्खी जैसी अहम परागणकर्ताओं की कमी का संकट गहराता जा रहा है। यह संकट हिमाचल के सेब के बागनों तक सीमित नहीं है, बल्कि कई और राज्यों में फल और सब्जी जैसी प्रमुख कैश क्रॉप उत्पादक किसानों को परेशान कर रहा है।

गुजरात में अनार में परागण के वक्त मधुमक्खी पालक खेतों मे पहुंचते हैं, लेकिन अनार से भी नेक्टर नहीं मिलने के कारण मधुमक्खी पालक किसानों से हर एक कॉलोनी का किराया वसूल करते हैं। गुजरात के मधुमक्खी पालक जिगर फलिया *डाउन टू अर्थ* को बताते हैं कि कच्छ इलाके में अनार के बगीचे बहुतायत में हैं, लेकिन वहां मधुमक्खियां की संख्या कम होती जा रही है, इसलिए किसान हमसे (मधुमक्खी पालक) मधुमक्खी

दुनिया के लगभग 90 प्रतिशत जंगली फूलों वाले पौधे जानवरों की मदद से परागण करते हैं। ये पौधे कई जानवरों को खाना और रहने की जगह देते हैं, इसलिए ये पर्यावरण के लिए बहुत जरूरी हैं

इंटरगवर्नमेंटल साइंस पॉलिसी प्लेटफॉर्म ऑन बायोडायवर्सिटी एंड इकोसिस्टम सर्विसेज (आईपीबीईएस) रिपोर्ट, 2016

कॉलोनियां किराए पर लेते हैं।

ऐसे बागान जहां फूलों से मधुमक्खियों के परागण के दौरान शहद नहीं निकलता, वहां मधुमक्खी पालक वहां ये काम करते हैं। हालांकि, जहां फूलों से मधुमक्खी पालक को शहद मिल जाता है। वहां मधुमक्खी पालकों और किसानों के बीच आपसी सामंजस्य भी बना हुआ है। यानी एक पंथ दो काज। किसानों को अपनी फसलों में परागण के जरिए ज्यादा पैदावार का फायदा मिल जाता है और मधुमक्खी पालकों को शहद।

डाउन टू अर्थ ने 28 मार्च, 2025 को पंजाब के पठानकोट जिले में लीची बागों की यात्रा की। यहां नरोट मेहरा गांव में लीची के बाग हैं। इन बागों में जगह-जगह मधुमक्खियों के बक्से रखे हुए हैं। खेतों में राजस्थान के भरतपुर से पहुंचे मधुमक्खीपालक टेंट लगा कर लीची में फूल आने का इंतजार कर रहे हैं। जैसे ही पेड़ों पर फूल आएंगे वे अपने बक्सों में बंद मधुमक्खियों को फूलों का रस चूसने के लिए आजाद कर देंगे।

मधुमक्खियां लीची का रस निकालकर वापस अपनी कॉलोनी में लाएंगी, जहां फिर मधुमक्खी पालक शहद निकालेंगे। इस प्रक्रिया के दौरान ही मधुमक्खियां लीची के बागों में परागण भी करती रहेंगी। भरतपुर के हरवीर सिंह पाली इन लीची बागों में पॉलिनेशन सर्विस देने के लिए यहां 10 दिन पहले ही पहुंचे हैं। इससे पहले उनकी मधुमक्खियां सरसों के खेतों में परागण कर रही थीं। वह बताते हैं, "सबसे ज्यादा दिन मधुमक्खियों का प्रवास सरसों के खेतों में ही होता है।" वह अपना रूटमैप समझाते हैं कि लीची के बागों में करीब 20 दिन रहेंगे। इसके बाद मधुमक्खियों के बक्सों के लेकर वह कश्मीर चले जाएंगे। मधुमक्खी पालक इन कॉलोनियों को लेकर हिमाचल प्रदेश या जम्मू कश्मीर के पहाड़ों पर इसलिए ज्यादा वक्त गुजारते हैं ताकि मैदानी क्षेत्रों के गर्म तापमान में मधुमक्खियों का जीवन संकट में न पड़ जाए।

पाली ने बताया कि लीची किसानों से वह कोई पैसा नहीं लेते बल्कि बदले में किसानों को कुछ शहद दे देते हैं। वह कहते हैं कि लीची के फूलों से काफी शहद निकल जाता है, जिसे वह बेच देते हैं। इसका अलावा लीची के फलों से निकलने वाले शहद में लीची जैसा स्वाद होता है, इसलिए इस शहद की मांग भी अच्छी खासी होती है।

पठानकोट के नरोट मेहरा गांव के ही रहने वाले शमशेर सिंह के पास डेढ़ एकड़ (कीला) जमीन है। 40 साल पहले उन्होंने अपने खेतों में लीची के पेड़ लगाए थे। उनकी जमीन का एक बड़ा हिस्सा खाली छूटा है जहां मधुमक्खी पालक हर साल लीची के सीजन में अपने बक्सों को रखते हैं क्योंकि इन्हीं मधुमक्खियों की बदौलत अच्छी फसल मिलती है।

शमशेर कहते हैं, "पहले उनके इलाके में मधुमक्खियों के साथ-साथ चमगादड़ भी बहुत आते थे, इससे फूलों का परागण हो जाता था, लेकिन दो-ढाई दशक पहले इनकी संख्या कम हो गई। शुरुआत में कश्मीर के मधुमक्खी पालक उनके यहां आए और बाग में थोड़ी सी जगह मांगी, जहां वे मधुमक्खियों के बक्से रख देते थे। लेकिन पिछले कुछ सालों से राजस्थान के भरतपुर से मधुमक्खी पालक यहां आते हैं।" शमशेर का अनुमान है कि मधुमक्खियों की वजह से लीची के उत्पादन में 30 से 40 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है।

फसल उत्पादन में परागण पर निर्भरता

बिना परागणकर्ताओं के परागण पर निर्भर फसलों के उत्पादन में पांच से 10 फीसदी की बड़ी गिरावट हो सकती है

फसलों की संख्या

जो आंशिक रूप से परागणकर्ताओं पर निर्भर हैं : 75 प्रतिशत

तीन-चौथाई फसलें परागणकर्ताओं पर किसी न किसी हद तक निर्भर हैं। परागणकर्ता इनकी उपज को कुछ हद तक बढ़ाते हैं।

फसल उत्पादन

(टन में मापा गया) जो आंशिक रूप से परागणकर्ताओं पर निर्भर है : 35 प्रतिशत

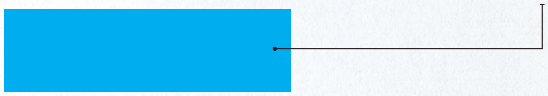

- हमारी 75 प्रतिशत फसलें परागणकर्ताओं पर निर्भर हैं, लेकिन केवल एक-तिहाई उत्पादन पर निर्भर होता है।
- इसका कारण यह है कि हमारे सबसे अधिक उत्पादित फसलें (जैसे अनाज) परागण पर निर्भर नहीं होतीं।

परागणकर्ताओं के बिना फसल उत्पादन में गिरावट

(टन में मापा गया)

निम्न और मध्यम आय वाले देशों में : 8 प्रतिशत गिरावट

उच्च आय वाले देशों में : 5 प्रतिशत गिरावट

- अधिकतर परागण पर निर्भर फसलें परागणकर्ताओं के बिना पूरी तरह से नष्ट नहीं होतीं, लेकिन उनकी उपज घटती है।
- इसका अर्थ है कि फसल उत्पादन में गिरावट 35 प्रतिशत से कम, यानी लगभग 5 से 10 प्रतिशत के बीच होगी।

स्रोत : मार्सेलो आइजन एट अल.(2019) और एलेक्जैंड्रा-मारिया क्लाइन एट अल.(2006), विश्लेषण ऑवर वर्ल्ड इंडिया डाटा डॉट ओआरजी

कृत्रिम परागण

जंगली मधुमक्खियों या अन्य प्राकृतिक परागणकर्ताओं से परागण अब स्वप्न जैसा बनता जा रहा है। कर्नाटक के खेतों में कभी मधुमक्खियों, तितलियों और अन्य देसी परागणकर्ताओं की गूंज रहती थी लेकिन अब वह चुप हैं। राज्य के किसान अब हाथों से परागण कर रहे हैं ताकि बागवानी और व्यापारिक फसलों की पैदावार बनी रहे। इसकी सबसे बड़ी वजह है प्राकृतिक परागणकर्ताओं की संख्या में बड़ी गिरावट।

वनीला जैसी खास फसलों के लिए हाथों से परागण ही एकमात्र जरिया था लेकिन यह नजारा अब अन्य फसलों के लिए भी आम होता जा रहा है। कॉफी, मिर्च, संतरा, सब्जियां, इलाइची, नारियल, सुपारी और फूलों तक में हाथों से परागण जारी है। इसे अब अस्थायी उपाय नहीं बल्कि एक स्थायी रणनीति बना दिया गया है। हाथों से परागण के लिए सरकारी और गैर सरकारी प्रशिक्षण दिए जा रहे हैं। संकट इतना गहरा है कि

मधुमक्खियों का देशाटन

देश का ऐसा शायद ही कोई हिस्सा बचा हो जहां मधुमक्खियों के बक्से लेकर मधुमक्खीपालक न जाते हों। कहीं परागण के लिए अत्यधिक मांग हैं तो कहीं मधुमक्खियों की कॉलोनी का जीवन बचाने और शहद के लिए उन्हें पलायन करना पड़ता है

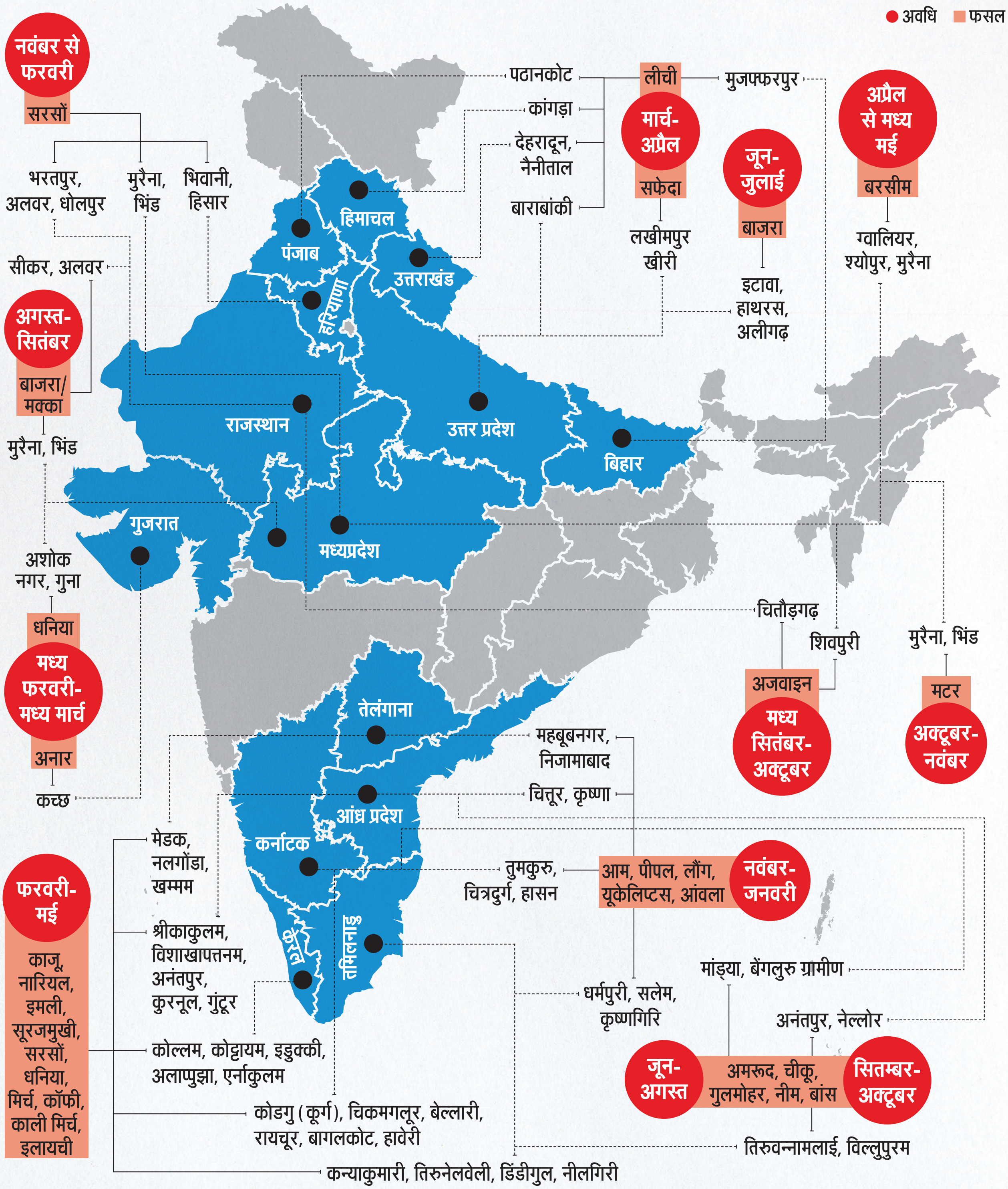

स्रोत: विभिन्न मधुमक्खी पालकों से बातचीत पर आधारित

कर्नाटक के कोडागु, चिकमंगलूर और पश्चिमी घाट जैसे जैव विविधता वाले इलाकों में भी परागणकर्ताओं की कमी हो रही है।

कोडागु जिले में दूसरी पीढ़ी के कॉफी किसान नंजप्पा कोडवा अपना दर्द बयां करते हैं,"पहले कॉफी के फूलों पर मधुमक्खियों की गूंज बनी रहती थी। अब वह नहीं रही।" वह आगे बताते हैं "हमें कुछ फूलों का हाथ से परागण करना पड़ता है ताकि न्यूनतम पैदावार मिल सके। लेकिन यह बहुत मेहनतभरा काम है। कॉफी के फूल नाजुक होते हैं और जल्दी मुरझा जाते हैं। पांच एकड़ खेत में एक दिन में परागण करने के लिए 15 से 25 कुशल लोग चाहिए। यह काम हर मजदूर नहीं कर सकता। इसमें प्रशिक्षण जरूरी है।"

वहीं, चिक्कमगलूर जिले के मुदिगेरे तालुक में किसान लक्ष्मण गौड़ा बताते हैं, "मधुमक्खी कॉफी की सबसे जरूरी परागणकर्ता हैं लेकिन अब इनकी संख्या काफी कम हो गई है। खासकर अरेबिका किस्म की उपज घट रही है। गांधी कृषि विज्ञान केंद्र और भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक मानते हैं कि जंगलों की कटाई और निवास स्थान की हानि इसके पीछे प्रमुख कारण हैं।"

बागवानी विभाग के एक वरिष्ठ कीट वैज्ञानिक बताते हैं कि नियोनिकोटिनॉयड जैसे कीटनाशकों के अनियंत्रित उपयोग से परागणकर्ता मर रहे हैं। जंगलों की कटाई और प्राकृतिक आवास के बिखराव से उनके रहने और भोजन की जगह कम हो गई है। जलवायु परिवर्तन से बारिश का पैटर्न बिगड़ रहा है और सर्दियां गर्म हो गई हैं, जिससे परागणकर्ताओं के जीवन चक्र पर असर पड़ रहा है। मोनोकल्चर यानी एकल फसलों से फूलों की विविधता घटी है, जिससे जंगली परागणकर्ता आकर्षित नहीं हो रहे। राज्य में परागण पर निर्भर फसलों की संख्या बहुत ज्यादा है। कुछ फसलें आत्म-परागण करती हैं लेकिन फिर भी बेहतर फल के लिए कीटों की जरूरत होती है। वनीला सबसे प्रसिद्ध हाथ से परागित फसल है। इसे सटीक तकनीक से करना होता है जो किसान एक-दूसरे को सिखाते हैं। कर्नाटक के मलनाड और तटीय क्षेत्रों में अब वनीला की खेती फिर से बढ़ रही है। लेकिन गुणवत्ता अब भी अंतरराष्ट्रीय स्तर से कम है जिससे निर्यात मुश्किल है। उडुपी जिले में कुंडापुर तालुक में शंकरनारायण गांव के किसान विनयचंद्रा ने बताया कि उम्मीद के मुताबिक उत्पादन नहीं हो रहा।

कॉफी में अरेबिका आंशिक रूप से स्व-परागित होती है लेकिन क्रॉस-परागण से फल समान होते हैं और बीज बड़े होते हैं। *डाउन टू अर्थ* ने पाया कि धारवाड़ और बागलकोट में, जहां हाइब्रिड किस्में उगती हैं, वहां ब्रश के जरिए परागण किया जा रहा है। बागलकोट, कोप्पल, धारवाड़, बेलगावी, हुबली में 60 प्रतिशत खेतों में हाथ से परागण होता है। 40 प्रतिशत में ही कभी-कभार प्राकृतिक परागण होता है।

इसी तरह टमाटर, बैंगन, खीरा और लौकी जैसी फसलें मधुमक्खियों से परागित होती हैं लेकिन बेंगलुरु, मैसूर, हासन, चिकमंगलूर, चित्रदुर्ग और शिवमोग्गा के आसपास अब हाथ से परागण किया जा रहा है। तटीय जिलों जैसे दक्षिण कन्नड़, उडुपी और उत्तर कन्नड़ जिले में काजू, जामुन, वाटर एप्पल, कुछ जंगली जामुन और मट्टी गुल्ला (बैंगन की एक विशेष किस्म) जैसी फसलों में भी अब परागण को प्रेरित किया जा रहा है।

कूर्ग की संतरे की फसल (मंदारिन) अब घट गई है। इसकी गुणवत्ता और मात्रा दोनों में गिरावट आई है। यहां कुछ किसान हाथ से परागण कर रहे हैं ताकि बागानों में कुछ पेड़ बच सकें। नारियल और सुपारी में हवा से परागण होता है लेकिन कीटों की मदद से ज्यादा फल आते हैं। अब किसान खुद पराग फैला रहे हैं। खासकर अनियमित बारिश के बाद यह चलन बढ़ गया है। इसके अलावा सकलेशपुर और वेस्टर्न घाट में अब कम मधुमक्खियां देखी जा रही हैं। यहां मजदूर अब नरम ब्रश से परागण करते हैं। उत्तर कन्नड़ में परागणकर्ताओं की कमी के कारण लौंग, जायफल और कालीमिर्च जैसे मसालों में हाथ से परागण की कोशिशें हो रही हैं।

बीज उत्पादन और निर्यात-योग्य गुणवत्ता के लिए गेंदा, चंपा और मोगरा जैसे फूलों में हाथ से परागण किया जा रहा है। उडुपी तालुक की मैरी मचाडो बताती हैं कि शंकरापुरा मोगरा को जीआई टैग मिला है और इसे मध्यपूर्व देशों में निर्यात किया जाता है। लेकिन पास के थर्मल पावर प्लांट से उड़ती धूल की वजह से परागणकर्ता कम हो गए हैं और उत्पादन आधा रह गया है।

यूं सब बदल गया

मेरी उम्र 72 साल है। हमारा पुश्तैनी घर लकड़ी, पहाड़ी पत्थर और मिट्टी का बना था। तीन मंजिला मकान में पहले तल गाय,बैल के लिए था। दूसरे तल पर स्टोर था, जहां अनाज के अलावा दूसरा सामान रहता था और तीसरे तल में हम लोग रहते थे। दूसरे तल में खिड़कियों की तरह दीवारों पर लकड़ी के डिब्बे लगाए जाते थे। जिन्हें हम गण कहते थे। इन गणों में 12 महीने मधुमक्खियां रहती थीं। साल भर में दो बार हम अपने खाने के लिए इन डिब्बों से शहद निकालते थे। चूंकि तब सर्दियों में बर्फ पड़ती थी और ठंड बहुत हो जाती थी तो मधुमक्खियां इन डिब्बों से बाहर नहीं निकलती थी। ऐसे मे हम सर्दियो से पहले शहद नहीं निकालते थे, ताकि मधुमक्खियां शहद खाकर जीवित रहें। यही मधुमक्खियां हमारी फसलों के परागण का काम करती थीं। जब हमने 1965 में नया घर बनाया तो इस घर में भी मधुमक्खियों के लिए दो बक्से लगाए गए जहां अब भी मधुमक्खियां आती हैं और शहद के साथ-साथ परागण का काम करती हैं। हालांकि अब बहुत कुछ बदल गया। पहले सरसों, सूरजमुखी और कई तरह की विविध फसलें लगाते थे जिनसे मधुमक्खियां रस लेती रहती थी। लेकिन अब पूरे इलाके में सेब के बगीचे ही हैं। इनमें जहरीली कीटनाशकों का इस्तेमाल करना पड़ता है, उस वजह से मधुमक्खियां मर जाती हैं। हमारे भी सेब के 150 पेड़ हैं। अभी तक हम दूसरे सेब उत्पादकों की तरह मधुमक्खियों के बक्से किराए पर नहीं ले रहे हैं, लेकिन लगता है कि मधुमक्खियां किराए पर लेनी पड़ेंगी। इसकी वजह यह है कि ओलावृष्टि की घटनाएं बढ़ रही हैं और हमें भी अब एंटी हेल नेट लगाने पड़ रहे हैं।

जंगली मधुमक्खियां हेल नेट लगे बगीचों में नहीं जाती, जबकि बगीचों में बक्सों में रखी गई मधुमक्खियां बगीचे में ही घूमती हैं। साथ ही उनकी उड़ान भी नीचे रहती है, जिस वजह से बक्से में पल रही मधुमक्खियां कामयाब हैं।

परम देव, सेब बागवान, ग्राम जंजहैली, जिला मंडी, हिमाचल

हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में स्थित जंजहैली घाटी में सेब के बागानों पर परागण के लिए किराए के मधुमक्खी बक्सों को ले जाता किसान

हाथ से परागण आसान नहीं है। इसमें कुशल श्रमिक चाहिए, सही समय पर करना होता है और फूल के समय में बार-बार निगरानी रखनी होती है। वनीला को खिलने के 12 घंटे के भीतर परागित करना होता है, नहीं तो फूल गिर जाता है। आम की फसलों में भी यही हाल है। मुंडगोड के किसान रमेश नाईक ने बताया कि देवगढ़ और रत्नागिरी के हाई वैल्यू आम जब उत्तर कन्नड़ में उगाए गए तो वहां परागणकर्ताओं की कमी थी। लेकिन किसानों ने हाथ से परागण किया और पैदावार और गुणवत्ता दोनों बढ़ गए।

केरल के पश्चिमी घाट क्षेत्र भी परागण संकट की मार झेल रहे हैं। यहां इलायची, कॉफी, काजू और नारियल जैसी नकदी फसलें पैदा करने वाले किसान पारंपरिक परागणकर्ताओं पर अत्यधिक निर्भर हैं। यहां भी एकल फसल खेती की प्रथा ने यहां परागणकर्ताओं की संख्या को काफी कम कर दिया है।

एस. देवनेसन के नेतृत्व में केरल कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा संचालित ऑल इंडिया कोऑर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट ऑन हनीबीज एंड पॉलिनेटर्स एक महत्वपूर्ण पहल रही है। इस अध्ययन के निष्कर्ष इडुक्की के इलायची बागानों और जंगल क्षेत्रों में किए गए अध्ययनों पर आधारित हैं। इन अध्ययनों से पता चला कि राज्य की मधुमक्खियों के लिए कई खतरे मौजूद हैं। जैसे मोबाइल टावरों से निकलने वाला विकिरण, वैश्विक तापमान में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई और कीटनाशकों का अनियंत्रित उपयोग। शोध से यह भी पता चला कि बड़ी मधुमक्खी कॉलोनियों की संख्या में भारी गिरावट आई है और कीटनाशकों का अधिक प्रयोग जहां हुआ है, वहां इलायची उत्पादन में भारी कमी दर्ज की गई है।

देवनेसन चेताते हैं, "यदि मोबाइल टावरों को नियंत्रित करने के उपाय नहीं किए गए, तो केरल से मधुमक्खियां खत्म हो सकती हैं।" वहीं, शोध में साथ देने वाली केएस प्रेमिला के अनुसार, असमय वर्षा, तापमान में वृद्धि और तेज हवाएं जैसी प्रतिकूल मौसम स्थितियां भी बड़ी मधुमक्खियों को प्रवास के लिए मजबूर कर रही हैं। वह बताती हैं, "ये सभी कारक बड़ी मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ताओं की संख्या में गिरावट का कारण बनते हैं।"

पश्चिमी मधुमक्खी दुनिया की सबसे व्यापक रूप से पाली जाने वाली परागणकर्ता है। वैश्विक स्तर पर लगभग 8 .1 करोड़ छत्ते हैं जो सालाना अनुमानित 16 लाख टन शहद का उत्पादन करते हैं

इंटरगवर्नमेंटल साइंस पॉलिसी प्लेटफॉर्म ऑन बायोडायवर्सिटी एंड इकोसिस्टम सर्विसेज (आईपीबीईएस) रिपोर्ट, 2016

इडुक्की और वायनाड में पाले जाने वाले और जंगली दोनों तरह की मधुमक्खी कॉलोनियों की संख्या में गिरावट देखी गई है। शोधकर्ताओं ने यह भी देखा कि मधुमक्खियां अब जंगलों से भी गायब हो रही हैं। यह स्थिति बताती है कि अधिकारियों को तत्काल कदम उठाने की जरूरत है-जैसे मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देना, कीटनाशकों का सीमित उपयोग, मोबाइल टावरों पर नियंत्रण और पर्यावरणीय खतरों को रोकना *(देखें : ऐसे बच सकते हैं कीट परागक, पृष्ठ 33)*।

केरल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट के डॉ टी वी सजीव के अनुसार, परागणकर्ता पक्षी और स्तनधारी जो सामान्य तौर पर कीटों की तुलना में उपेक्षित रह जाते हैं, वे भी केरल में गंभीर खतरे का सामना कर रहे हैं। वायनाड और इडुक्की जैसे क्षेत्रों में आक्रामक पौधों की प्रजातियों के फैलाव से स्थानीय वनस्पति को प्रतिस्पर्धा मिलती है, जिससे परागणकर्ताओं के लिए संसाधन घटते हैं और स्थानीय प्रजातियां भी प्रभावित होती हैं। वहीं दूसरी ओर, परागणकर्ता स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र के लिए आवश्यक हैं और इनकी गिरती संख्या से गंभीर पारिस्थितिकीय परिणाम हो सकते हैं। केरल में भौंरे जो बड़ी इलाइची के पौधों के परागण में अहम भूमिका निभाते हैं। उसमें भी बड़ी कमी देखी गई है। महाराष्ट्र के दापोली स्थित डॉ. बालासाहेब सावंत कोंकण कृषि विद्यापीठ के पूर्व कुलपति एसडी सावंत ने कहा कि भंवरे और मधुमक्खी बड़ी इलायची के प्रमुख परागणक हैं, जो हिमालयी क्षेत्र में मुख्य रूप से भूटान, नेपाल और सिक्किम में उगाई जाती है।

वह आगे कहते हैं "बड़ी इलायची के पौधे का परागण मुख्य रूप से भंवरों पर निर्भर करता है। लेकिन हिमालयी क्षेत्र में जहां इनकी गतिविधि कम होती है वहां के बागानों में कम उपज एक बड़ी चिंता का विषय है।" यह पौधा 2005 में हिमालयी क्षेत्र से केरल के छोटी इलायची उगाने वाले क्षेत्र में वाणिज्यिक खेती के लिए लाया गया था, लेकिन अपेक्षित परिणाम नहीं मिले क्योंकि इस क्षेत्र में परागण भंवरे मौजूद नहीं थे।

केरल विश्वविद्यालय के पलट्टी आलेश सिनू द्वारा किए गए एक अध्ययन में, जो 2007 में *करंट साइंसेज* में प्रकाशित हुआ था, यह खुलासा हुआ कि बड़े इलायची के पौधे का फूल बड़ा होता है लेकिन उसका नेक्टर ट्यूब लंबा होता है और केवल लंबी जीभ वाली मक्खियां जैसे भौंरे द्वारा ही इसे पहुंचाया जा सकता है।

सावंत कहते हैं कि अध्ययन में यह भी बताया गया कि पराग का स्रोत एंथर, फूल के स्त्री अंग (स्टीग्मा) के चारों ओर एक संकरी कॉलम में स्थित होता है, जिसमें लैबेलम होता है। "मधुमक्खी को अमृत इकट्ठा करने के लिए कॉलम के माध्यम से धक्का देना पड़ता है। इस प्रक्रिया में भौंरे अपने शरीर पर पराग इकट्ठा कर लेते हैं और जब वह स्टीग्मा से संपर्क करते हैं तो पराग स्टीग्मा पर स्थानांतरित हो जाता है, जिससे परागण में मदद मिलती है।"

यह स्पष्ट किया गया कि सामान्य भारतीय मधुमक्खी भी बड़ी इलायची के फूलों पर आती है और इन मधुमक्खियों का शरीर संकरा होता है, इसलिए यह आसानी से फूल के अंदर जाती है। अपने पुटी में काफी पराग इकट्ठा करती है, लेकिन

खाद्य पदार्थ परागण करने वाले कीटों पर कितने निर्भर हैं?

87 फीसदी से अधिक फूल वाले पौधों की प्रजातियां प्रजनन के लिए जानवरों द्वारा परागण पर निर्भर होती हैं

कोई निर्भरता नहीं

यदि परागण करने वाले कीट न हों, तो उपज पर कोई असर नहीं होता

अनाज: गेहूं, मक्का, चावल, ज्वार, जौ, राई, बाजरा, जई

कंद और जड़ें: कसावा, आलू, शकरकंद, गाजर

दालें: मसूर, मटर, चना

फल और सब्जियां: केला, अनानास, अंगूर, सलाद पत्ता, शिमला मिर्च

शर्करा फसलें: गन्ना और शुगर बीट

साथ ही शामिल हैं: सुपारी, शतावरी, पत्तागोभी, अरंडी का तेल बीज, फूलगोभी, चिकोरी जड़ें, खजूर, लहसुन, हेजलनट्स, जोजोबा बीज, हरे प्याज, प्याज, जैतून, पिस्ता, क्विनोआ, पालक, टारो, ट्रिटिकेल, अखरोट, याम्स

थोड़ी निर्भरता

परागणकर्ता न होने पर उपज में 0% से 10% की कमी आती है

फल और सब्जियां: संतरा, टमाटर, नींबू, पपीता

तेल फसलें: ताड़, पोस्ता बीज, अलसी, केसर बीज

दालें: सेम, लोबिया, अरहर

मूंगफली

साथ ही शामिल हैं: बाम्बारा बीन्स, मिर्च, चकोतरा, खाकी, स्ट्रिंग बीन्स

मध्यम निर्भरता

परागणकर्ता न होने पर उपज में 10% से 40% की कमी आती है

तेल फसलें: सूरजमुखी, रेपसीड, तिल, सरसों

सोयाबीन

फल: स्ट्रॉबेरी, करंट, अंजीर, गूजबेरी, बैंगन

नारियल और भिंडी

कॉफी बीन्स

साथ ही शामिल हैं: ब्रॉड बीन्स, करीते नट्स, बीज कॉटन

उच्च निर्भरता

परागणकर्ता न होने पर उपज में 40% से 90% की कमी आती है

फल: सेब, खुबानी, ब्लूबेरी, चेरी, आम, आड़ू, आलूबुखारा, नाशपाती, रसभरी

नट्स: बादाम, काजू, कोला नट्स

एवोकाडो

साथ ही शामिल हैं: खीरा, कुट्टू, जायफल, सौंफ, धनिया

आवश्यक

परागणकर्ता न होने पर उपज में 90% से अधिक की कमी आती है

फल: कीवी, खरबूजा, कद्दू, तरबूज

कोकोआ बीन्स

ब्राजील नट्स

साथ ही शामिल हैं: वनीला, क्विन्स

स्रोत: मार्सेलो आइजन एट अल.(2019) और एलेक्जैंड्रा-मारिया क्लाइन एट अल.(2006), विश्लेषण ऑवर वर्ल्ड इंडिया डाटा डॉट ओआरजी

हमारी अज्ञानता

ऊंचाई पर रहने वाली परागणकर्ताओं की नई प्रजातियों के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है, जो संरक्षण में बड़ी बाधा बनकर उभर रहा है

डॉ. वी. पी. उनियाल

पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र दुनिया के सबसे पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण और जैव विविधता से समृद्ध पर्वतीय पारितंत्रों में से एक है। इन हिमालयी परागणकर्ताओं का आर्थिक महत्व बहुत ज्यादा है। वे खेती में बड़ा योगदान देते हैं। मसलन सिर्फ हिमालयी राज्यों में ही ये हर साल लगभग 1.5 अरब डॉलर का फायदा पहुंचाते हैं। ये औषधीय पौधों, लकड़ी और तितली पर्यटन जैसे ईको-पर्यटन के जरिए भी आमदनी बढ़ाते हैं। साथ ही, ये क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को सहारा देने वाली जरूरी पारिस्थितिक सेवाएं भी देते हैं। इसके बावजूद हिमालयी परागणकर्ताओं के बारे में हमारी जानकारी अब भी अधूरी है। शहद की मक्खियों और भौंरों पर तो काफी अध्ययन हुआ है, लेकिन ऊंचे पहाड़ी इलाकों में रहने वाली खास प्रजातियों जैसे रात में सक्रिय परागणकर्ताओं और कम पहचाने गए कीटों के बारे में जानकारी बहुत कम है।

यह जानकारी की कमी तब और गंभीर हो जाती है जब हम जलवायु परिवर्तन, जंगलों के खत्म होने और जमीन के इस्तेमाल में तेज बदलाव को देखते हैं। ये सब चीजें परागणकर्ताओं की संख्या के लिए खतरा बन चुकी हैं। परागणकर्ताओं की विविधता ऊंचाई के अनुसार अलग-अलग दिखती है, लेकिन अब तक ज्यादातर शोध सिर्फ तराई इलाकों और आर्थिक रूप से अहम प्रजातियों पर ही हुआ है। कई जरूरी परागणक समूहों पर अब भी कम ध्यान दिया गया है।

उच्च पहाड़ों में रहने वाली अकेली मधुमक्खियां ठंडी, कठिन परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढाल चुकी हैं। लेकिन इनकी संख्या के बारे में सही जानकारी नहीं है। 3,500 मीटर से ऊपर रहने वाली तितलियों की खास प्रजातियां जलवायु परिवर्तन के प्रति बहुत संवेदनशील हैं। रात में परागण करने वाले पतंगों की भूमिका पहाड़ी इलाकों में लगभग अनदेखी रही है। वहीं, होवरफ्लाई जैसे कीट जो नीचे की ऊंचाइयों में परागण करते हैं, उन पर भी ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अभी तक ठीक से अध्ययन नहीं हुआ है। हाल के खोजी अध्ययनों में यह पता चला है कि ऊंचे पहाड़ी इलाकों में कई नई, पहले से अज्ञात परागणकर्ता प्रजातियां पाई गई हैं। इसका मतलब है कि असली विविधता को समझना अभी शुरुआती दौर में ही है।

नई रिपोर्टों से यह पता चलता है कि कई परागणकर्ता प्रजातियां अब पहले से ज्यादा ऊंचाई पर मिल रही हैं, जो इन समुदायों की बदलावशीलता और ताजे अनुसंधान की जरूरत को बताता है।

पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में कृषि का बड़ा हिस्सा परागण पर निर्भर करता है, जिसमें सेब, खुबानी, चेरी जैसे फल, सरसों और सूरजमुखी जैसे तिलहन, विभिन्न दालें और सब्जियां, साथ ही कई औषधीय और सुगंधित पौधे शामिल हैं। अनुसंधान से यह पता चलता है कि हिमालयी राज्यों की 70 फीसदी से अधिक प्रमुख फसलें पशु-परागण से लाभ पाती हैं, जिनमें कुछ पूरी तरह से विशिष्ट परागणकर्ताओं पर निर्भर होती हैं। उदाहरण के लिए, हिमाचल प्रदेश में सेब की फसल स्थानीय एपिस सेरेना और बॉम्बस प्रजातियों पर बहुत निर्भर करती है और परागण के कारण फलों की संख्या में 40-60 फीसदी तक वृद्धि होती है, जो पवन या स्व-परागण से संभव नहीं है। हिमालय के कई रोडोडेंड्रन पौधे सफल प्रजनन के लिए खास भौंरों पर निर्भर होते हैं, जिससे यह पारिस्थितिक संबंध बहुत नाजुक हो जाता है। पश्चिमी हिमालय में जलवायु में तेजी से हो रहे बदलावों का परागणकर्ताओं पर गहरा असर हो रहा। कई पौधों में फूल जल्दी आ रहे हैं, जिससे परागणकर्ताओं की गतिविधियों के समय के साथ मेल नहीं खा रहा है। कुछ प्रजातियां ऊंचाई की ओर बढ़ रही हैं, जिससे पारंपरिक जैविक संबंध प्रभावित हो रहे हैं। बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि के बढ़ते मामले फूलों को नुकसान पहुंचा रहे हैं, जिससे परागणकर्ताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। हिमपात के पैटर्न और हिमपिघलने के समय में बदलाव के कारण शुरुआती मौसम में फूलों की उपलब्धता घट रही है, जो नए परागणकर्ताओं के लिए जरूरी होते हैं। भूमि उपयोग में बदलाव भी परागणकर्ताओं के संरक्षण के लिए एक बड़ी चुनौती बन चुका है। कृषि का विस्तार प्राकृतिक आवासों को कम कर रहा और शहरीकरण से परागणकर्ताओं के आवागमन में रुकावटें आ रहीं हैं। अधिक चराई के कारण घास के मैदानों को नुकसान हो रहा, वनों की कटाई से घोंसले और भोजन के स्रोत खत्म हो रहे बुनियादी ढांचे का विस्तार पारिस्थितिकी तंत्र को तोड़ रहा है। क्षेत्र में आक्रामक और बाहरी प्रजातियां रोग फैलाकर परागण तंत्र को नुकसान पहुंचा रही हैं। आक्रामक पौधे स्थानीय फूलों के स्रोतों को खत्म कर देते हैं और बाहरी परागणकर्ता स्थानीय प्रजातियों के साथ प्रतिस्पर्धा करके उन्हें बाहर कर सकते हैं। पश्चिमी हिमालय में परागणकर्ता संरक्षण पर शोध की कमी एक बड़ी बाधा है।

(लेखक वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया के पूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक और वर्तमान में देहरादून स्थित ग्राफिक एरा विश्वविद्यालय में सेंटर फॉर सस्टेनेबल इकोलॉजी एंड बायोडाइवर्सिटी रिसर्च के निदेशक हैं)

प्रबंधित कॉलोनियों की बढ़ती रफ्तार

छह दशकों में एशिया, दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और ओशिनिया में मधुमक्खी कालोनियों की संख्या जहां बढ़ी है, वहीं, दूसरी ओर उत्तर अमेरिका और यूरोप में इसमें गिरावट आई है। जबकि बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले में प्रबंधित कॉलोनियों की रफ्तार कम है

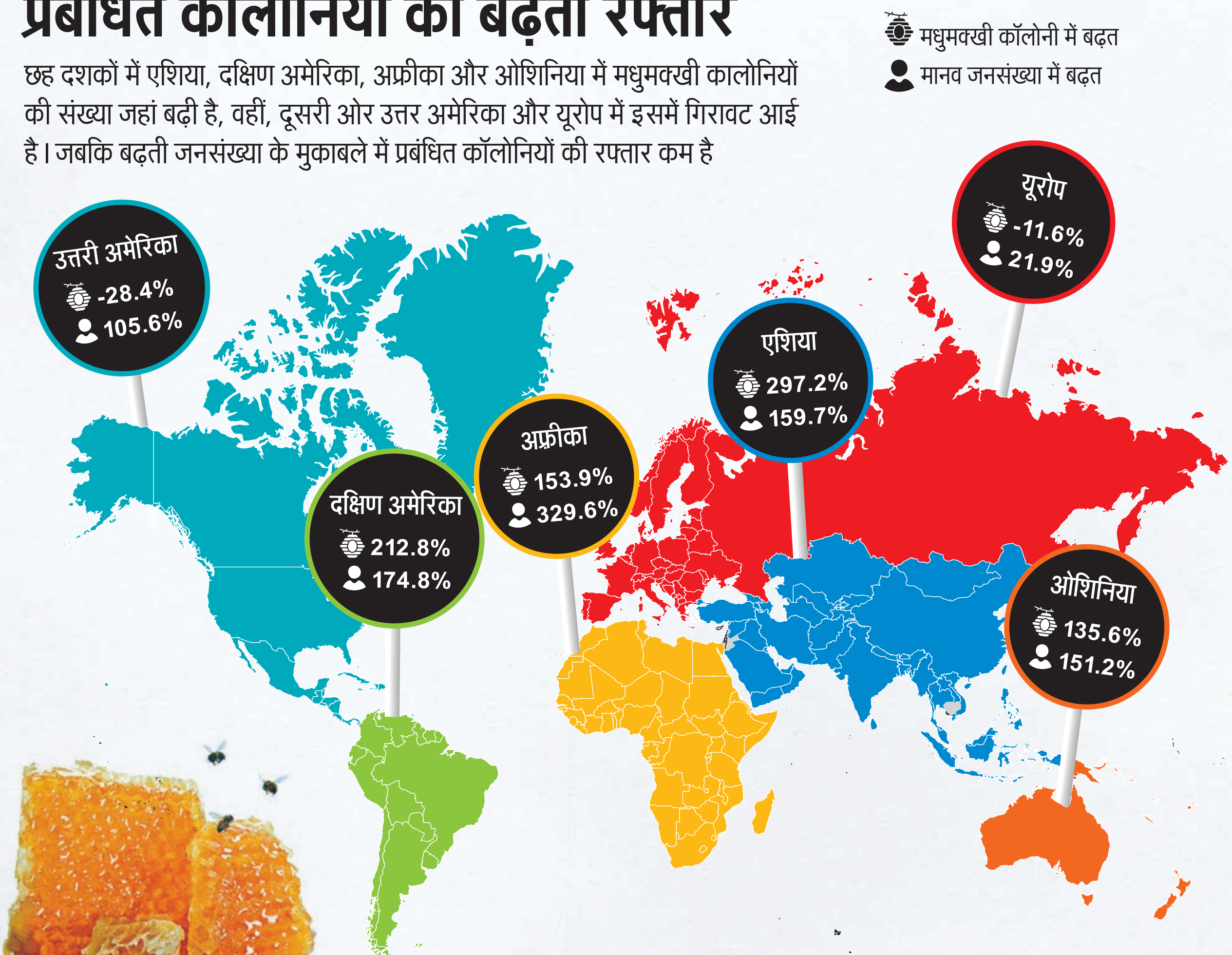

नोट : नक्शे में 1961 से 2017 के बीच मधुमक्खी पालन से जुड़ी कॉलोनियों और मानव जनसंख्या में क्षेत्रीय स्तर पर प्रतिशत बदलाव को दिखाया गया है।
स्रोत : नेचर जर्नल, **शीर्षक :** अपट्रेंड इन ग्लोबल मैनेज्ड हनी बी कॉलोनीज एंड प्रोडक्शन बेस्ड ऑन अ सिक्स-डेकड व्यूपॉइंट1961–2017

जब बाहर आती है तो उसका शरीर स्टीग्मा से संपर्क नहीं करता और परागण नहीं होता। शोधकर्ताओं ने कई फूलों का निरीक्षण किया जहां सामान्य मधुमक्खी ने पराग इकट्ठा किया, लेकिन उनमें से कोई भी परागण में नहीं बदला और फल का विकास नहीं हुआ। दूसरी ओर, भौंरों द्वारा देखे गए लगभग हर फूल में परागण हुआ। यह संभवतः भौरों के बड़े शरीर के आकार के कारण है जो परागण में मदद करता है। सामान्य मधुमक्खी पराग तो इकट्ठा करती है, लेकिन फूल का परागण नहीं कर पाती।देश के लगभग हर हिस्सों में परागणकर्ताओं पर संकट है। खासतौर से मधुमक्खियों की गिरावट साफतौर पर महसूस की जा रही है। परागणकर्ताओं की कमी ने एक कारोबार को जन्म दे दिया है।

बढ़ता कारोबार

यदि प्रबंधित मधुमक्खियों की कॉलोनी (मैनेज्ड कॉलोनी) को मधुमक्खी पालक देशभर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक न ले जाएं तो फसलों के परागण का संकट और भी गहरा होता जाएगा। मधुमक्खियों की प्रबंधित कॉलोनियों को पूरे साल देश के अलग-अलग हिस्सों में पहुंचाने वाले मधुमक्खी पालकों का नया काम "पॉलिनेशन सर्विस" का बनता जा रहा है। चौधरी के मुताबिक मधुमक्खी पालक अब जंगली फूलों के साथ-साथ देश भर में अलग-अलग फसलों में परागण के वक्त अपने बक्से लेकर पहुंच जाते हैं। इसे मधुमक्खियों का पलायन यानी "बी माइग्रेशन" भी कहा जाता है। उत्तर भारत में मधुमक्खी पालक सरसों के अलावा अजवाइन, लीची, बाजरा, मक्का, बेरी, लाल बेर मिर्च, यूकेलिप्टस आदि में पहुंचते हैं *(देखें : मधुमक्खियों का देशाटन, पेज 26)*।

स्थिति यह है कि मधुमक्खी पालक जितना शहद से नहीं कमाते उतना वह पॉलिनेशन के लिए मधुमक्खियों की कॉलोनियों को किराए पर देकर कमा लेते हैं। परागणकर्ताओं के संकट की स्थिति धीरे-धीरे बिगड़ती गई और मानव के द्वारा प्रबंधित कीट

वर्ष भर देशभर में विभिन्न फसलों में परागण के लिए घूमने वाले मधुमक्खी पालक ऊना जिले के जंगल में शहद निकालते हुए

परागणकर्ताओं ने इसकी जगह ले ली है। प्राकृतिक कीटों की कमी के दौरान पालतू मधुमक्खियों को मुहैया कराने की प्रक्रिया को कुछ जानकार आर्टिफिशियल पॉलिनेशन या कृत्रिम परागण भी कहते हैं। हिमाचल प्रदेश के शिमला के जुब्बल कोटखाई इलाके के रहने वाले निकम चौहान 33 वर्षों से मधुमक्खी पालन का काम करते हैं। वह अपना अनुभव जाहिर करते हैं, "पहले जब मधुमक्खी पालक राजस्थान में सरसों के खेतों में मधुमक्खियों की कॉलोनियों को लेकर जाते तो किसान उन्हें खेतों में रखने से मना कर देते थे। मजबूरी मे मधुमक्खी पालक किसानों को जमीन का किराया देते थे, लेकिन अब वह हालात नहीं रहे। किसान को भी समझ आ गया है कि मधुमक्खी की वजह से उनकी फसल का उत्पादन अच्छा होता है, इसलिए अब किसान मधुमक्खी पालकों को आमंत्रित करते हैं, बल्कि उनके लिए आसपास का पूरा खेत खाली तक छोड़ देते हैं।"

मधुमक्खी पालन की भाषा में एक बक्से को कॉलोनी कहा जाता है। लगभग दो फुट चौड़ी व दो फुट लंबी इस कॉलोनी में 10 हजार से 20 हजार मधुमक्खियां रहती हैं। *साइंस जर्नल* में वर्ष 2021 में प्रकाशित शोध "रैपिड मेजरमेंट ऑफ द अडल्ट वर्कर पॉपुलेशन साइज इन हनी बीज" के मुताबिक अलग-अलग महीनों में मधुमक्खियों की संख्या एक कॉलोनी में घट-बढ़ सकती है। मधुमक्खियों की संख्या एक कॉलोनी में करीब छह हजार से 52 हजार तक भी हो सकती है।

प्रबंधित मधमुक्खी पालन का बड़े पैमाने पर काम करने वाले ऊना के अरुण चौधरी हिमाचल के जंजहैली इलाके में सेब के बागानों के लिए मधुमक्खी की कॉलोनियों किसानों को किराए पर मुहैया कराते हैं। *डाउन टू अर्थ* ने उनके फॉर्म हाउस का दौरा किया, जहां मधुमक्खियों को पालने और शहद निकालने का काम बड़े पैमाने पर होता है। वह अनुमान से बताते हैं कि एक सीजन में जंजहैली के पूरे इलाके में लगभग 300 कॉलोनियों की खपत होती है और एक कॉलोनी का किराया 1,000 रुपए से लेकर 1,500 रुपए सेब बागान के किसानों से लिया जाता है। इस तरह 20 से 30 दिन में उन्हें एक फॉर्म (लगभग 250 कॉलोनियां) से ढाई से तीन लाख रुपए मिलते हैं। इसमें ट्रांसपोर्ट, लोडिंग-अनलोडिंग के अलावा मधुमक्खियों को फीडिंग का

> **लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया और ओशिनिया में जंगली परागणकर्ताओं से जुड़ा पर्याप्त डेटा नहीं है, फिर भी कई जगहों पर इनकी संख्या में गिरावट देखी गई है**
>
> **इंटरगवर्नमेंटल साइंस पॉलिसी प्लेटफॉर्म ऑन बायोडायवर्सिटी एंड इकोसिस्टम सर्विसेज (आईपीबीईएस) रिपोर्ट, 2016**

ऐसे बच सकते हैं कीट परागक

कृषि क्षेत्रों में कीट परागकों की आबादी बढ़ाने का सबसे सरल तरीका यह है कि उनके आवास को सुरक्षित और अनुकूल बनाया जाए

पीटर स्मेटासेक

मनुष्यों ने हजारों साल पहले कृषि की कला में निपुणता प्राप्त कर ली थी। आज जो भोजन हम खाते हैं, वह लगभग पूरी तरह से किसी न किसी रूप में परिवर्तित किया गया है। चाहे वह बिना बीज वाले अंगूर हों या विशाल मक्का की बालियां। बहुत कुछ हुआ लेकिन एक कार्य अब भी मनुष्य के वश से बाहर है। वह है परागण की प्रक्रिया, जिसमें किसी तीसरे पक्ष का हस्तक्षेप आवश्यक होता है। आमतौर पर यह हवा, पानी, कीट, पक्षी या स्तनधारी जीवों के रूप में होता है। कुछ साल पहले कनाडा में शहद की मक्खियों के छत्तों के नष्ट होने की घटनाएं सामने आईं और तरह-तरह की कहानियां और आशंकाएं सामने आने लगीं। कुछ लोगों ने यह दावा किया कि यदि कीट समाप्त हो गए तो इंसान भूख से मरने लगेंगे। वहीं कुछ ने एक ऐसी दुनिया की कल्पना की जिसमें पौधे बिना बीजों के रह जाएंगे और कीड़ों, विशेष रूप से शहद की मक्खियों की अनुपस्थिति में प्रजनन ही नहीं कर पाएंगे। इन सभी बातों का वास्तविकता से बहुत कम संबंध है। एक औसत व्यक्ति के आहार का बड़ा हिस्सा अनाज से बनता है। परिभाषा के अनुसार, अनाज घास का बीज होता है और घास का परागण कीटों से नहीं बल्कि हवा से होता है। पक्षी कुछ पौधों का परागण करते हैं, लेकिन भारत में वे खाद्य रूप में बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं। चमगादड़ कई वन्य पौधों का परागण करते हैं, जिनमें केले भी शामिल हैं, लेकिन जो केले खेती के लिए उगाए जाते हैं, उन्हें परागण की आवश्यकता ही नहीं होती। मधुमक्खियां केवल मानव खाद्य का एक छोटा सा हिस्सा परागित करती हैं। विशेष रूप से सेब, नाशपाती, आड़ू, आलूबुखारा, चेरी और गुलाब कुल के अन्य फल। ये बीन्स, मटर और दालों जैसी सब्जियों का भी परागण करती हैं। भौंरे टमाटर, मिर्च, बैंगन, शिमला मिर्च और नाइटशेड कुल के अन्य पौधों का परागण करते हैं। तितलियों के बारे में वैश्विक स्तर पर किसी भी पौधे के अनन्य परागक के रूप में कोई प्रमाण नहीं है। वास्तव में, कृषि में उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। कुछ, जैसे कैबेज वाइट्स (पाइरिस प्रजातियां) और पीब्लू (लैम्पाइड्स बोएटिकस), अपने-अपने पौधों पर मामूली कीट के रूप में पाए जाते हैं, लेकिन इन्हें आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

हालांकि मटर और हरी फलियां स्वपरागित होती हैं, फिर भी मधुमक्खियों और पतंगों जैसे बाहरी परागक इन फसलों में परस्पर परागण में मदद करते हैं और बीज की गुणवत्ता को बेहतर बनाते हैं।

किसान परागण समस्या को दो तरीकों से सुधार सकते हैं। एक तरीका है मेहनत से हाथ से पराग डालना और दूसरा तरीका है ऐसा माहौल बनाना जिसमें मधुमक्खियां और दूसरे पराग लाने वाले जीव आसानी से रह सकें। उत्तर अमेरिका में, सेब और नाशपाती जैसे फलों के बड़े बागानों के मालिक घुमंतू मधुमक्खी पालकों से मक्खियों के छत्ते किराए पर लेते हैं। ये पालक इस सेवा में विशेषज्ञ होते हैं और किसानों को परागण के लिए मक्खियां उपलब्ध कराते हैं। भारत में यह व्यावसायिक तौर पर संभव नहीं। कृषि क्षेत्रों में कीट परागकों की आबादी बढ़ाने का सबसे सरल तरीका यह है कि उनके आवास को सुरक्षित और अनुकूल बनाया जाए। खजूर के पेड़ हवा से परागित होते हैं लेकिन हवा से परागण अक्सर अनिश्चित होता है, इसलिए मध्य एशिया और पश्चिम एशिया में परंपरागत रूप से खजूर के पेड़ों का परागण मनुष्यों द्वारा हाथ से किया जाता है। भारत में भी कुछ किसान अब सेब, स्ट्रॉबेरी और कीवी जैसे फलों का परागण हाथ से करने लगे हैं। हालांकि, बीन्स, मिर्च आदि जैसी फसलों के लिए यह तरीका व्यावहारिक नहीं है। इसका समाधान है कि व्यापक प्रभाव वाले कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जाए और परागकों के लिए अनुकूल पर्यावरण तैयार किया जाए। ब्रिटेन में यह देखा गया कि बड़े खेतों में उगाई गई फसलें अक्सर कीटों के हमले का शिकार होती थीं, जबकि पारंपरिक रूप से छोटे खेतों में ऐसा कम ही होता था। इसका कारण थोड़ा असामान्य था- मशीनीकरण के साथ-साथ खेतों की मेड़ों को हटाना सुविधाजनक लगने लगा। लेकिन इन छोटे-छोटे आवासों को नष्ट करने से वे जीव भी समाप्त हो गए जो कीटों पर नियंत्रण रखते थे और इसी के चलते कीटों के प्रकोप बढ़ने लगे। शायद हमें भी ऐसे ही समाधान तलाशने की आवश्यकता है, क्योंकि हम हर लाभकारी कीट की विशिष्ट पर्यावास आवश्यकताओं को कृत्रिम रूप से पूरी तरह दोबारा नहीं बना सकते। हमें बस प्रकृति को अपना काम करने देना चाहिए। मैंने भीमताल में यह प्रयोग किया जहां कभी केवल चाय की झाड़ियां थीं और पहाड़ी एकदम उजाड़ थी। वहां पिछले 75 वर्षों से हम उस क्षेत्र की रक्षा कर रहे हैं। आज वहां एक घना चौड़ी पत्तियों वाला वन है। आसपास के गांवों में टेढ़ी-मेढ़ी फलियां या विकृत स्ट्रॉबेरी की कोई समस्या नहीं है। परागक जीवों की आबादी स्थिर है और फसलों की जरूरतों के लिए पूरी तरह पर्याप्त है। शायद परागक संकट के समाधान का एक तरीका राज्य वन विभागों को उनके आलस्य से जागरूक करना है।

(लेखक उत्तराखंड में रहते हैं और स्वतंत्र कीट विज्ञानी हैं)

भारत पालतू मधुमक्खियों का सरताज

बीते छह दशकों (1961–2017) में पालतू मधुमक्खियों की कॉलोनियों में वैश्विक स्तर पर बढ़त दर्ज की गई है

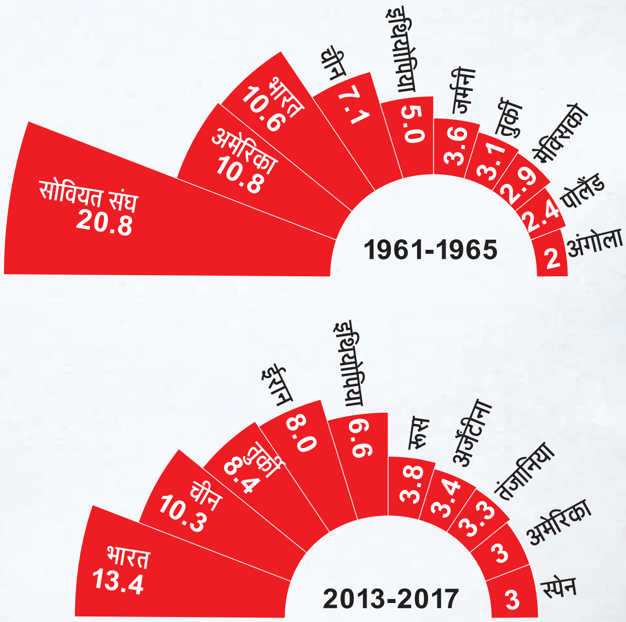

स्रोत: नेचर जर्नल, शीर्षक : अपट्रेंड इन ग्लोबल मैनेज्ड हनी बी कॉलोनीज एंड प्रोडक्शन बेस्ड ऑन अ सिक्स-डेकड व्यूपॉइंट1961–2017, शीर्ष दस देशों का ब्यौरा

खर्चा घटा दिया जाए तो 1.50 लाख रुपए से अधिक की बचत हो जाती है। अरुण चौधरी गणित समझाते हुए कहते हैं कि एक कॉलोनी में रहने वाली मधुमक्खियां सामान्य तौर पर साल भर में लगभग 30 किलोग्राम शहद का उत्पादन करती हैं और अगर एक फार्म में 250 कॉलोनियां हैं तो 7,500 किलोग्राम शहद का उत्पादन होता है। इस समय कच्चे शहद की औसत कीमत 100 रुपए प्रति किलोग्राम है। इसका मतलब है कि एक फार्म से लगभग 7,50,000 रुपए की आमदनी होगी, जबकि साल भर का खर्चा लगभग 6 लाख रुपए आता है। ऐसे में साल भर की बचत 1,50,000 रुपए की बचत होती है। इसका मतलब है कि हिमाचल प्रदेश में सेब उत्पादकों से मिलने वाला किराया साल भर में शहद से होने वाली आमदनी के बराबर ही होती है।

हिमाचल प्रदेश बागवानी विकास रणनीति और निवेश योजना 2023-2030 रिपोर्ट में कहा गया है कि यह एक स्थापित तथ्य है कि मधुमक्खियों द्वारा परागण के कारण फलों की पैदावार में वृद्धि का मूल्य सीधे शहद से प्राप्त होने वाले शहद के मूल्य से 14 से 20 गुना अधिक होता है। राज्य में बागवानी बागों में उचित परागण के लिए लगभग 2,00,000 मधुमक्खी कॉलोनियों की आवश्यकता होती है। हालांकि, मधुमक्खी पालक कहते हैं कि पूरे राज्य में 4 लाख से अधिक बक्से किराए पर लिए जा रहे हैं।

मधुमक्खियों जैसे परागकों की कमी के चलते पॉलिनेशन सर्विस के लिए मधुमक्खियों को किराए पर लेने के चलन ने बहुत पहले दुनिया में अपने पैर पसार दिए हैं। 2005 में खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) के अमेरिकी कृषि और उपभोक्ता संरक्षण विभाग ने अनुमान लगाया था कि दुनियाभर में कीटों द्वारा परागित होने वाली फसलों की कुल कीमत लगभग 200 अरब डॉलर थी। साथ ही अमेरिका में किसानों द्वारा परागण के लिए मधुमक्खियां किराये पर लेने की जरूरत करीब 20 प्रतिशत तक बढ़ गई थी। वहीं, चीन ने 1990 के दशक में परागणकर्ताओं की कमी के चलते मानव परागक तैयार कर दिए। प्राकृतिक परागकों की घटती संख्या और पालतू मधुमक्खियों की कॉलोनियों पर बढ़ती निर्भरता एक अजीबोगरीब संकट की ओर ढकेल सकती है। भारत में फिलहाल यह फायदे का गणित बनकर लुभा रहा है लेकिन इस बढ़ते नए कारोबार से यह भी पता चलता है कि खतरे की घंटी बज चुकी है और भारत भी आर्टिफिशियल पॉलिनेशन की विफल कहानियों को दोहरा सकता है *(देखें : विफल हुआ हाथ से परागण, पृष्ठ 35)*।

सेब बागानों से मोहभंग

इस बीच कुछ मधुमक्खी पालकों का सेब के बागानों से मोहभंग भी जारी है। इसका कारण है कि सेब के परागण के दौरान बहुत सी मधुमक्खियां मर जाती हैं। मधुमक्खी पालक निकम चौहान हिमाचल प्रदेश के ही रहने वाले हैं, लेकिन उन्होंने सेब के बगीचों के लिए अपनी मधुमक्खियां किराए पर देना बंद कर दिया है। वह बताते हैं कि परागण के बाद मधुमक्खियों के मरने की वजह से उन्हें नुकसान हो रहा था।

चौहान के मुताबिक, "दो साल पहले मार्च माह में अचानक तापमान में गिरावट के कारण बड़ी तादाद में मधमुक्खियां मर गई। इसके अलावा सेब किसान परागण के दौरान कीटनाशक का छिड़काव कर देते हैं, जिससे भी मधुमक्खियां मर जाती हैं, इसलिए उन्होंने अब मधुमक्खियां किराए पर देना बंद कर दिया है।" जानकार इसे नए संकट के तौर पर देखते हैं। डॉ. वाईएस परमार यूनिवर्सिटी ऑफ हॉर्टीकल्चर एंड फॉरेस्ट्री के प्रिंसिपल साइंटिस्ट एमएस जांगड़ा कहते हैं, "परागण में अहम किरदार निभा रही मधुमक्खियों के लिए यदि सुरक्षात्मक उपाय नहीं किए गए तो आने वाले समय में संकट गहरा सकता है।"

वहीं, कई शोध लगातार आगाह कर रहे हैं कि खासतौर से हिमालयी क्षेत्र पर प्रजातियों के लिए भविष्य में संकट गहरा होगा। *नेचर जर्नल* में प्रकाशित शोध "अनवेलिंग ऑफ क्लाइमेट चेंज ड्रिवेन डिक्लाइन ऑफ सुटेबिल हैबिटेट फॉर हिमालयन बंबलबीज" में चेताया गया है, "हमारी जानकारी में यह बात सामने आई कि आने वाले 50 वर्षों में हिमालय क्षेत्र की अधिकतर जगहें जीवों के रहने लायक नहीं रहेंगी। 2050 तक करीब 72 प्रतिशत प्रजातियों के लिए हिमालय का सिर्फ 10 प्रतिशत हिस्सा ही रहने लायक बचेगा। 2070 तक यह हालात और बिगड़ जाएंगे और 75 प्रतिशत प्रजातियों के लिए यह इलाका अनुकूल नहीं रहेगा।"

एक प्रजाति का राज

दुनिया में करीब 20,000 तरह की मधुमक्खियां पाई जाती हैं, जो अंटार्कटिका को छोड़कर हर महाद्वीप में मिलती हैं। हालांकि एक ही प्रजाति एपिस मेलिफेरा का दबदबा अभी दुनियाभर में है। अंतरराष्ट्रीय फूड एंड एग्रीकल्चरल ऑर्गेनाइजेशन (एफएओ) के मुताबिक इन पालतू मधुमक्खियों की संख्या में बीते छह दशक (1965-2017) में काफी इजाफा हुआ है। हालांकि, क्षेत्रीय कारणों से अमेरिका और यूरोप में पालतू मधुमक्खियों की कॉलोनियों की संख्या भी घटी है और पूरी दुनिया में भारत इस वक्त सबसे ज्यादा प्रबंधित मधुमक्खियों की कॉलोनियों वाला देश है। ऐसा कैसे हुआ? *नेचर जर्नल* ने 2022 में एफएओ संगठन के दुनियाभर में मधुमक्खी कॉलोनियों के बढ़ते हुए आंकड़ों की जांच करते हुए एक समीक्षा शोध छापा और कहा कि एफएओ ने अपने आंकड़ों में मधुमक्खी की प्रजाति को स्पष्ट नहीं किया है। हालांकि, बढ़ती कॉलोनियों के यह आंकड़े संभवतः मधुमक्खियों की एपिस मेलिफेरा प्रजाति के ही हैं *(देखें : प्रबंधित कॉलोनियों की बढ़ती रफ्तार, पृष्ठ 31)*।

साइंस डायरेक्ट जर्नल में प्रकाशित शोध "वर्ल्डवाइड ऑकरेंस रिकॉर्ड्स सजेस्ट ए ग्लोबल डिक्लाइन इन बी स्पेशीज रिचनेस" के मुताबिक एपिस मेलिफेरा को उसके मूल क्षेत्र यूरोप और अफ्रीका से लाकर अंटार्कटिका को छोड़कर हर महाद्वीप में बसाया गया है। हालांकि, कई देशों में पालतू और जंगली आबादी में गिरावट देखी गई है, फिर भी यह प्रजाति वैश्विक स्तर पर अब भी फल-फूल रही है।" इसी शोध पत्र में चेताया गया है "इससे मधुमक्खियों की विविधता में कमी और असमान वितरण के कारण परागण में कमी आ सकती है। साथ ही फल और बीजों की मात्रा और गुणवत्ता दोनों पर नकारात्मक असर पड़ सकता है।"

वेस्टर्न बी नाम की यह प्रजाति दुनियाभर में मुख्य फसलों को छोड़कर कुछ प्रमुख व्यावसायिक फसलों के परागण और शहद व मोम उत्पादन के लिए इस्तेमाल की जा रही हैं। इसने स्थानीय और जंगली मधुमक्खियों की प्रजातियों पर खतरा पैदा कर दिया है। हालांकि, चिंताजनक यह है कि ये पालतू मधुमक्खियां भी कई कारणों से खतरे में हैं।

सीएबीआई रिव्यू में प्रकाशित शोध के मुताबिक, "पालतू मधुमक्खियां जंगली मधुमक्खियों के लिए खतरा बन सकती हैं। पालतू मधुमक्खियां परागण के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती हैं। लेकिन अमेरिका में हर साल 20 से 30 फीसदी पालतू मधुमक्खियों की कॉलोनियां खत्म हो जाती हैं। इस स्थिति को कोलनी कोलैप्स डिसऑर्डर (सीसीडी) कहा जाता है। इससे लोगों का ध्यान परागण करने वाले जीवों की घटती संख्या की तरफ गया। कॉलोनियां कई कारणों से खत्म हो रही हैं। जैसे वरोआ माइट नामक परजीवी के कारण। इस नुकसान की भरपाई के लिए अब कई कंपनियां और लोग अपने घरों और शहरों में मधुमक्खियों के छत्ते पालने लगे हैं। इससे मधुमक्खियों की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन इससे जंगली मधुमक्खियों को फूलों और भोजन के लिए ज्यादा प्रतिस्पर्धा झेलनी पड़ रही है। इस कारण उनकी सेहत और संख्या पर बुरा असर पड़ा है।

शोध के मुताबिक सिर्फ मधुमक्खियां ही नहीं बल्कि पालतू भंवरों से भी जंगली भंवरों को नुकसान हो सकता है। इन्हें खासकर ग्रीनहाउस में परागण और रिसर्च के लिए पाला जाता है। ये भी जंगली भंवरों से भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। साथ ही इनमें वायरस और बीमारी फैलाने वाले कीटाणु भी हो सकते हैं, जो जंगली भंवरों तक पहुंच सकते हैं। जंगली भंवर इन छत्तों के पास रहते हैं, उनमें बीमारियां ज्यादा पाई गई हैं *(देखें : भंवरा पालन की कवायद, पृष्ठ 37)*। पालतू स्टिंगलेस बी यानी डंक न मारने वाली मधुमक्खियां भी जंगली मधुमक्खियों को नुकसान पहुंचा सकती हैं। दक्षिणी गोलार्ध में इनका इस्तेमाल फसल परागण के लिए बढ़ रहा है। इन्हें कई बार ऐसे इलाकों में ले जाया जाता है जहां ये पहले से नहीं थीं। इससे वहां की स्थानीय मधुमक्खियां खत्म होने का खतरा पैदा हो गया है। भारत में भी यूरोपियन प्रजाति के प्रसार पर काफी जोर है *(देखें : भारत*

विफल हुआ हाथ से परागण

वर्ष 2012 में आए एक शोधपत्र "द ह्यूमन पॉलिनेटर्स ऑफ फ्रूट क्रॉप्स इन माओशियान काउंटी, सिचुआन, चाइना" ने बताया कि चीन के माओशियान की सेब घाटी में किसानों को प्राकृतिक परागणकर्ताओं की कमी के चलते गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके चलते उन्होंने 1990 के दशक में एक अद्वितीय, श्रम-प्रधान और अस्थायी तरीका अपनाया। यह तरीका था "मानव परागणकों" को तैयार करना। यानी हाथों से परागण कराना। यह एक बड़े पैमाने की प्रक्रिया थी, जिसकी कल्पना करना भी कठिन था। क्योंकि पराग स्रोत के प्रबंधन की जानकारी हो या पराग एकत्र करने और उसे संसाधित करने की प्रक्रिया सब कुछ बेहद कठिन था।

माओशियान के किसानों ने इस बड़े पैमाने पर हाथ से परागण के लिए अपनी कौशल क्षमता और संस्थागत व्यवस्थाएं विकसित की थीं। लेकिन यह तरीका लागत के लिहाज से अस्थायी और अलाभकारी लग रहा था, खासकर जब इसके मुकाबले शहद की मधुमक्खियों जैसे प्राकृतिक परागणकर्ताओं को इस्तेमाल करना ज्यादा उपयुक्त और टिकाऊ समाधान हो सकता था। हालांकि, 2011 में जब माओशियान घाटी में सेब के किसानों का सर्वे किया गया तो पता चला कि सेब जो पिछले दशकों में मुख्य फसल था-अब सिर्फ कुछ ही बागानों में रह गया है और ये अब कुल कृषि आय का केवल 30 प्रतिशत ही योगदान देते हैं।साल 2001 में माओशियान क्षेत्र की मुख्य नकदी फसल सेब थी, लेकिन अब किसान इसे धीरे-धीरे छोड़ रहे हैं। इसकी जगह वे आलू बुखारा, लोकाट और अखरोट जैसे अन्य फलदार पेड़ लगा रहे हैं।

कई किसानों ने पहले ही सेब की जगह दूसरी फसलें लगा ली हैं और बाकी इस प्रक्रिया में हैं। इस बदलाव के चलते अब मिश्रित बागान आम दृश्य बन चुके हैं। शोध में बताया गया कि कई गांवों में सेब की खेती पूरी तरह से बंद हो चुकी है। किसानों से हुई बातचीत में यह बात सामने आई कि उत्पादन लागत, खासकर मानव परागणकों की बढ़ती कीमत एक बड़ा कारण था जिसकी वजह से उन्होंने सेब छोड़कर स्वयं परागित होने वाले फलों की खेती शुरू कर दी है।

क्रांति बिना डंक के!

बिना डंक वाली मधुमक्खियां कठिन परिस्थितियों में भी गुजारा कर सकती हैं और बहुत थोड़े संसाधनों में अपनी पर्यावरणीय सेवाएं जारी रख सकती हैं

विनायक पाटिल , मिलिंद पाटिल

मधुमक्खियों की विशाल दुनिया में केवल 11 प्रजातियों वाली शहद की मधुमक्खियां भले ही एक छोटा हिस्सा हों, लेकिन उन्होंने मानव संस्कृति और व्यापार पर गहरा प्रभाव डाला है। शहद को अमृतों का अमृत कहा जा सकता है। हैरानी की बात यह है कि शहद केवल शहद वाली मधुमक्खियां ही नहीं बनातीं। एक और समूह है जो अच्छी मात्रा में शहद बनाता है, ये हैं बिना डंक वाली मधुमक्खियां। ये मधुमक्खियां आकार में शहद की मधुमक्खियों से छोटी होती हैं, लेकिन इनकी सामाजिक संरचना वैसी ही होती है। ये भी सहजीवी होती हैं और हजारों की संख्या वाली कॉलोनियों में रहती हैं। इनकी कॉलोनी में भी कई मजदूर, कुछ रक्षक और एक रानी होती है। इन सभी के पास डंक नहीं होता, इसलिए इन्हें बिना डंक वाली मधुमक्खियां कहा जाता है। मजदूर मधुमक्खियां पराग, रस और रेजिन (राल) जुटाती हैं और एक छत्ता बनाती हैं जो संरचनात्मक रूप से शहद की मधुमक्खियों के छत्ते से काफी अलग होता है।

ये मधुमक्खियां रेजिन और मोम से छोटे-छोटे गुच्छेदार पात्र बनाती हैं जिनमें वे पराग और शहद को अलग-अलग संग्रह करती हैं और अंडे देती हैं। अगर असली हनीपॉट कहीं है, तो वह यही है!

इनका छत्ता प्रमुख तौर पर जीवित पेड़ों और चट्टानों की दरारों में बनाया जाता है। लेकिन अब ये तेजी से मानव-परिस्थिति के अनुकूल हो गई हैं और दीवारों, पाइपों, इलेक्ट्रिक स्विचबोर्ड जैसे स्थानों में भी रहने लगी हैं। इन्हें पालने की पारंपरिक विधियां जैसे मिट्टी के बर्तन, खोखले बांस या लकड़ी के बक्सों में पालना प्रचलित हैं। इस प्रक्रिया को मेलिपोनिकल्चर कहा जाता है। ये मधुमक्खियां बहुत छोटी होती हैं, इसलिए इनके छत्तों में शहद की मात्रा सामान्य तौर पर बहुत कम होती है, लेकिन अपनी औषधीय विशेषताओं के कारण इसका मूल्य बहुत अधिक होता है और यह प्रीमियम दरों पर बिकता है। एक वैश्विक समीक्षा में पाया गया कि ये मधुमक्खियां फूल वाले पौधों की 220 कुलों (फैमिली) पर परागण करती हैं। ये फूलों के अमृत, अतिरिक्त फूल-अमृत, पौधों से प्राप्त रेजिन और विभिन्न स्रोतों से नमी एकत्र करती हैं। इनकी पिछली टांगों पर पराग टोकरी (कॉर्बिकुला) होती है, जिनका उपयोग बड़ी मात्रा में पराग ले जाने के लिए किया जाता है। इनके कुछ गुण बेमिसाल हैं जैसे अत्यंत छोटे फूलों का उपयोग, जटिल संकेतों की प्रणाली के माध्यम से अन्य साथियों को भोजन खोजने के लिए प्रेरित करना, अधिकतम परागण संभावना के लिए जब तक किसी प्रजाति के फूल उपलब्ध हों तब तक केवल उसी के फूलों पर जाना।

स्टिंगलेस मधुमक्खियां सेब, आम और नारियल जैसी व्यावसायिक फसलों की भरपूर और प्रभावी परागकण वाहक साबित हुई हैं। इन्हें खीरा, शिमला मिर्च, टमाटर और स्ट्रॉबेरी जैसी फसलों की संरक्षित खेती में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। इनके परागण से न केवल उत्पादन अधिक होता है, बल्कि फलों की गुणवत्ता भी बेहतर होती है। दुनिया भर में प्रबंधित परागण सेवाएं मुख्य तौर पर शहद वाली मधुमक्खियों पर निर्भर हैं। हालांकि, यह तरीका बाहरी मधुमक्खियों के आक्रमण के खतरे से प्रभावित होता है। वैज्ञानिक अब परागण सेवाओं को स्थानीय मधुमक्खियों, यानी विभिन्न क्षेत्रों की मूल प्रजातियों की स्टिंगलेस मधुमक्खियों की ओर स्थानांतरित करने की सलाह दे रहे हैं। ये इसके लिए आदर्श हैं क्योंकि इन्हें कृत्रिम पोर्टेबल छत्तों में पालना, संभालना और स्थानांतरित करना आसान है। एक बार कृत्रिम छत्ते में स्थापित हो जाने पर कॉलोनी दशकों तक उसमें रह सकती है। शहद वाली मधुमक्खियों के विपरीत, यहां रानी मधुमक्खी पंखविहीन होती है और छत्ता नहीं छोड़ सकती। छत्ते में कुछ भावी रानियां (गाइनी) भी होती हैं जो पुरानी रानी का स्थान ले सकती हैं। इस प्रकार एपिकल्चर में आम तौर पर पाया जाने वाला छत्तों के पलायन का मुद्दा यहां नहीं होता। स्टिंगलेस मधुमक्खियां जो भी थोड़े से संसाधन किसी खास अवधि के दौरान उपलब्ध होते हैं, उन पर जीवित रह सकती हैं। इस प्रकार, वे भोजन की अनुपलब्धता से प्रभावित नहीं होतीं और उन्हें अतिरिक्त आहार की आवश्यकता नहीं होती। चरम मौसम की स्थिति में वे अंदर से प्रवेश द्वार को बंद कर सकती हैं और हफ्तों तक छत्ते में रह सकती हैं। यह देखा गया है कि कीटनाशक छिड़काव के दौरान स्टिंगलेस मधुमक्खियां अपने छत्तों में लौट आती हैं और तब तक अंदर रहती हैं जब तक रसायन धोकर निकल नहीं जाते। यह व्यवहार वे भारी बारिश के दौरान भी करती हैं। वे जलवायु परिवर्तन के प्रति भी लचीलापन दिखाती हैं और बेमौसम बारिशों के दौरान निष्क्रिय रहकर भी स्वस्थ रह सकती हैं। इसी तरह,अपनी सही तरह से आश्रयित छत्तों के अंदर तापमान बनाए रखने की उनकी क्षमता बढ़ते तापमान के खिलाफ सहायक हो सकती है।

(लेखक विनायक पाटिल महाराष्ट्र में दापोली स्थित डॉ. बी. एस. कोंकण कृषि विद्यापीठ के कॉलेज ऑफ फॉरेस्ट्री के प्रोफेसर हैं। वहीं सह लेखक मिलिंद पाटिल, स्टिंगलेस मधुमक्खी के जरिए शहद उत्पादन करते हैं)

पालतू मधुमक्खियों का सरताज, पृष्ठ 34)। हिमाचल प्रदेश बागवानी विभाग की वेबसाइट के मुताबिक, प्रदेश में आधुनिक मधुमक्खी पालन की शुरुआत 1934 में कुल्लू घाटी और 1936 में कांगड़ा घाटी में हुई थी। राज्य में 1961 तक केवल एपिस सेरेना इंडिका (भारतीय मधुमक्खी) का पालन किया जाता था, लेकिन 1961 में इटली से एपिस मेलिफेरा को राज्य के नागरोटा स्थित मधुमक्खी अनुसंधान केंद्र में लाया गया। हालांकि 1983-84 तक एपिस मेलिफेरा केवल प्रदेश के उत्तर जोन तक सीमित थी, हालांकि, 1983-84 के बाद जब एपिस सेरेना इंडिका की कॉलोनियां थाई सैक ब्रूड वायरस के कारण लगभग नष्ट हो गईं, तब से विभाग द्वारा रखी गई मधुमक्खी कॉलोनियों का 90 फीसदी से अधिक और निजी मधुमक्खीपालकों द्वारा प्रबंधित सभी कॉलोनियां अब एपिस मेलिफेरा प्रजाति की हैं।

यदि एक ही प्रजाति की मधुमक्खी ज्यादा हो जाए तो क्या होगा? इसका जवाब सरल है। जब बहुत ज्यादा पालतू मधुमक्खियों को किसी जगह पर रखा जाता है जैसे खेतों में परागण के तो वे फूलों का पराग और मधुरस बहुत तेजी से इकट्ठा कर लेती हैं। इससे वहां की जंगली मधुमक्खियों को खाने के लिए फूलों से मिलने वाला पोषण कम मिल पाता है। पालतू मधुमक्खियां बीमारियां और वायरस फैला सकती हैं, जो जंगली मधुमक्खियों को भी बीमार कर सकते हैं। पालतू मधुमक्खियों की संख्या ज्यादा होती है, इसलिए वे जंगली मधुमक्खियों से भोजन और जगह के लिए प्रतिस्पर्धा करती हैं। कई शोधपत्र इसकी पुष्टि करते हैं।

भारतीय मधुमक्खियों के नुकसान के पक्के वैज्ञानिक सबूत मिलने लगे हैं। *साइंस डायरेक्ट जर्नल* में जुलाई 2017 में प्रकाशित एक शोधपत्र "कोलेटिंग एंड वैलिडेटिंग इंडीजिनियस एंड लोकल नॉलेज टु अप्लाई मल्टिपल नॉलेज सिस्टम्स टु एन एनवायर्नमेंटल चैलेंजः अ केस-स्टडी ऑफ पॉलिनेटर्स इन इंडिया" के मुताबिक, उड़ीसा के किसानों से मिली जानकारी बताती है कि वहां पाई जाने वाली पांच तरह की मधुमक्खियों जैसे एपिस सेरेना, एपिस डॉर्साटा, एपिस फ्लोरिया, एमेजिला और जाइलोकोपा में से चार की संख्या 70 से 90 फीसदी तक घट गई है। सिर्फ एपिस डॉर्साटा नाम की मधुमक्खी पर इसका असर नहीं पड़ा। हाल ही में बेंगलुरु में किए गए एक अध्ययन में यह सामने आया कि मधुमक्खियों की संख्या में करीब 20 प्रतिशत तक की कमी आई है। यह नतीजे स्प्रिंगर नेचर लिंक जर्नल में "इफेक्ट्स ऑफ लोकल फार्म मैनेजमेंट ऑन वाइल्ड बीज थ्रू टेम्पोरल एंड स्पैशियल स्पिलओवर्सः एविडेंस फ्रॉम सदर्न इंडिया" नाम से प्रकाशित हुए हैं। ऐसा ही कोलकाता विश्वविद्यालय के एग्रोइकोलॉजी पोलिनेशन स्टडीज सेंटर की कुछ और रिपोर्टों में भी ऐसा ही रुझान देखने को मिला है। भारत में पाए जाने वाली विशाल मधुमक्खियों (जायंट हनीबीज) पर किए गए एक अन्य अध्ययन में भी यह पुष्टि हुई है कि ये अब भारत में संकटग्रस्त स्थिति में हैं।

मधुक्खियों की विभिन्न प्रजातियों का ही खतरा नहीं है बल्कि इन पालतू मधुमक्खियों की प्रजाति पर कीटनाशक, पर्यावास के नुकसान और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं का चौतरफा हमला है। *रिसर्च गेट* पर प्रकाशित शोध "पॉलिनेटर डिक्लाइन-एन इकोलॉजिकल क्लैमिटी इन द मेकिंग?" के शोधार्थी क्रिस्टोफर जे. रोड्स के मुताबिक गिरावट के सबसे विश्वसनीय आंकड़े पालित मधुमक्खियों के हैं। यूरोप और अमेरिका जैसे क्षेत्रों में कॉलोनियों के बड़े स्तर पर नुकसान हुए हैं, जिसका कारण "कॉलोनी कॉलैप्स डिसऑर्डर" (सीसीडी) को माना गया। सीसीडी एक रहस्यमयी और गंभीर स्थिति है जिसमें मधुमक्खियों (खासतौर पर एपिस मेलिफेरा यानी वेस्टर्न हनी बी) की एक पूरी कॉलोनी अचानक खाली हो जाती है। मतलब कि काम करने वाली अधिकांश मधुमक्खियां छत्ता छोड़ देती हैं और वापस नहीं लौटतीं, जबकि रानी मधुमक्खी, अंडे और कुछ युवा मधुमक्खियां वहीं रह जाती हैं। रोड्स के शोध मुताबिक, मधुमक्खियों के छत्तों के अचानक खत्म होने (सीसीडी) के

भंवरा पालन की कवायद

मधुमक्खियों पर मंडरा रहे खतरे को समझते हुए वैज्ञानिक अब पालित कीटों के विस्तार की दिशा में भी काम कर रहे हैं। वे मधमुक्खी पालन की तरह भंवरा पालन की पद्धति विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं।

भंवरे पौधों के परागण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि उनका आकार बड़ा और शरीर रोएंदार होता है, जिससे वे पराग को आसानी से उठा और एक फूल से दूसरे फूल तक पहुंचा सकते हैं। इसके अलावा वे फूलों को कंपन द्वारा भी परागण करने में सक्षम होते हैं। भंवरों के पास शहद की मधुमक्खियों की तरह कोई संप्रेषण प्रणाली नहीं होती, फिर भी वे सुरंगों और बंद संरचनाओं में भी प्रभावी ढंग से कार्य करते हैं क्योंकि उनकी दिशा पहचानने की क्षमता बेहतर होती है। एशियन रिसर्च जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर में प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक भंवरे किसी भी परागण कार्य में शहद की मधुमक्खियों से 400 गुना अधिक कुशल माने जाते हैं और एक मिनट में 30 से 50 फूलों तक का भ्रमण कर सकते हैं। ये झुंड नहीं बनाते और मधुमक्खियों की तुलना में कम आक्रामक होते हैं। यह अध्ययन बताता है कि भंवरे आमतौर पर सुबह 5:30 से 8:00 बजे और शाम 5:00 से 7:00 बजे के बीच पराग एकत्र करते हैं। यह उनका पराग एकत्र करने का सबसे मुफीद वक्त होता है। साथ ही ये शहद की मधुमक्खियों की तुलना में ग्रीनहाउस और ग्लासहाउस में बेहतर परागणकर्ता साबित होते हैं। इन्हें टमाटर, बैंगन, खीरा, तरबूज, स्ट्रॉबेरी, कद्दू, चेरी, स्वीट पेपर आदि फसलों की खेती में सहायक परागणकर्ता के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यह देखा गया है कि भंवरों के परागण से फलों की उपज और गुणवत्ता दोनों में सुधार होता है। भारत में नौणी स्थित वाईएस परमार परमार यूनिवर्सिटी ऑफ हॉर्टीकल्चर एंड फॉरेस्ट्री में भंवरे का व्यावसायिक स्तर पर पालन कर उन्हें परागण में उपयोग करने के प्रयास किए जा रहे हैं। यूनिवर्सिटी के कीट विज्ञान विभाग के अध्यक्ष सुभाष चंद्र वर्मा ने डाउन टू अर्थ को बताया कि भंवरा पालन को लेकर रिसर्च का काम अभी जारी है। अभी इसमें पूर्ण सफलता अभी तक नहीं मिली है। शोधपत्रों के मुताबिक जिन परागणकर्ताओं पर संकट है, उस सूची में भंवरों का स्थान शीर्ष पर है। इसके साथ ही पालतू मधुमक्खियों की तरह यदि भंवरों को भी तैयार कर लिया जाता है तो इससे पॉलिनेशन सर्विस को बेहतर बनाया जा सकेगा।

हिमाचल प्रदेश के मंडी जिले में सेब के बागानों में फूल आने वाले हैं। इससे पहले कीटनाशकों का छिड़काव जारी है

कई कारण हो सकते हैं। इनमें कीड़ों और बीमारियों का हमला, रहने की जगह की कमी, शरीर की कमजोर प्रतिरक्षा ताकत, पौष्टिक खाने की कमी और हाल ही में पाए गए एक खास तरह के कीटनाशक (नियोनिकोटिनॉयड्स) शामिल हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह समस्या किसी एक वजह से नहीं, बल्कि कई वजहों के एक साथ असर करने से हो रही है। हालांकि यह जानना कि क्या दुनिया भर में उड़ने वाले परागणकर्ता कीटों में समग्र गिरावट हो रही है, बहुत मुश्किल है क्योंकि लंबे समय तक और व्यापक क्षेत्र में किए गए आंकड़े पर्याप्त नहीं हैं *(देखें : हमारी अज्ञानता, पृष्ठ 30)*।

क्या हो यदि परागणकर्ता नहीं रहे

शोधपत्र "व्हाट आर द मेन रीजन फॉर द वर्ल्डवाइड डिक्लाइन इन पॉलिनेटर पॉपुलेशन्स" के मुताबिक यदि परागणकर्ता नहीं रहे, तो मानव आहार में बड़े बदलाव होंगे। आहार में मुख्य रूप से उन फसलों का वर्चस्व होगा जो हवा से परागित होती हैं, जैसे-गेहूं, चावल, जौ और मक्का। इसके अलावा, ऐसी फसलें भी प्रमुख होंगी जिन्हें इस तरह विकसित किया गया है कि वे स्व-परागण से ही प्रजनन कर सकें-जैसे कुछ किस्मों की सेम, मटर, सलाद पत्ता, टमाटर, चर्ड और पालक। केला जैसी फसलें जो पौधों से उगती हैं, वह भी आगे चलती रहेंगी। हालांकि, स्व-परागण से पौधों की आनुवंशिक विविधता कम हो जाती है, जिससे वे कीटों और बीमारियों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। इसी तरह, जो फसलें क्लोनिंग से उगाई जाती हैं, उनमें भी आनुवंशिक विविधता कम होती है, जिससे वे जलवायु परिवर्तन जैसी पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति कम लचीलापन रखती हैं।

बहुत सी फलों और सब्जियों की पैदावार और निरंतरता बनाए रखने के लिए हाथों से परागण करना होगा, जो बहुत महंगा और श्रमसाध्य कार्य है। इसके अलावा, स्व-परागित होने वाली फसलों की किस्में दुनियाभर में समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए, भविष्य में खाद्य पदार्थों की कीमतों में तेज वृद्धि और भूगोल के अनुसार खाद्य उपलब्धता में असमानता देखने को मिलेगी, जिससे वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर गंभीर संकट आ सकता है। परागणकर्ताओं में गिरावट से पौधों के समुदायों और उन पर आश्रित कीटों और जानवरों की विविधता भी प्रभावित होगी। जो पौधे परागणकर्ताओं पर निर्भर करते हैं, वे घटने लगेंगे, और हवा से परागित होने वाले, स्व-परागित होने वाले या वनस्पतिजन्य प्रजनन करने वाले पौधे अधिक संख्या में उगने लगेंगे। इससे पौधों से जुड़ी कीट और जीव-जंतुओं की पूरी संरचना ही बदल जाएगी। इसका असर न केवल मानव की मनोरंजन गतिविधियों पर पड़ेगा, बल्कि भविष्य में औषधीय या अन्य उपयोगों के लिए पौधों से नई खोजों की संभावनाएं भी सीमित हो जाएंगी।

अप्रैल 2019 में *बॉयोलॉजिकल कंजर्वेशन जर्नल* में प्रकाशित "वर्ल्डवाइड डिक्लाइन ऑफ द इंटोमोफौना : ए रीव्यू ऑफ इट्स ड्राइवर्स" शोध के मुताबिक "दुनियाभर में कीटों की जैव विविधता गंभीर खतरे में है। इस रिपोर्ट के अनुसार 40 फीसदी से अधिक कीट प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर हैं और यदि यही रुझान जारी रहा तो सदी के अंत तक कीटों का लगभग पूरी तरह से समाप्त हो जाना संभव है।" यदि ऐसा हुआ तो पूरी मानवजाति पर खतरा मंडरा सकता है। अमेरिका के मशहूर जीवविज्ञानी ई. ओ. विल्सन ने अपनी पुस्तक *द डायवर्सिटी ऑफ लाइफ* में लिखा, "कीट और अन्य स्थलीय आर्थ्रोपोड (जैसे मधुमक्खियां, तितलियां, भृंग आदि) इतने महत्वपूर्ण हैं कि यदि वे सभी गायब हो जाएं तो मानवता शायद कुछ महीनों से अधिक जीवित नहीं रह सकेगी।"